मनुष्य बनो

म्बर
९८२

शरणागति, शुभ संकल्प,

क्षमा,   प्रेम,

निष्काम कर्म, ब्रह्मचर्य पालन,

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टि-कोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है। मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायगा।

४—किसी धर्म, पंथ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जाँय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ साफ अवश्य लिखना चाहिये। उत्तर के लिये जबावी कार्ड आना चाहिये वी० पी० पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायगी। इसका वार्षिक मूल्य ८—०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुँचे तो पहले अपने यहां डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर मिले व अगला अङ्क निकलने से एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजने चाहिये। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ साफ लिखना चाहिये। और पते की तबदीली भी।

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

❋ मनुष्य बनो ❋

वर्ष ३३	मार्गशीर्ष संवत २०३९ वि०	सं० २

प्रार्थना श्री संतकबीर के चरण कमलों में ।

दाता ने आपको जात को माना था कबीर ।
फकीरों के फकीर थे और पीरों के पीर ।

कलियुग में प्रगट होकर दिया था संदेश एक ।
नाम बड़ा संसार में धारो उसकी टेक ।

जो समझा मैंने कहा निज अनुभव के अनुसार ।
भूल भरम में जग फँसा समझे नहीं सार असार।

ताते दुखी हैं हम समझ सके न तेरे बैन ।
बिना समझे बचन के नहीं पाता नर है चैन ।

भेंट तुम्हारी कर रहा हूँ अपना ख्याल और काम ।
कबूल उसको कीजिये जो लाया है दास फकीर ।

(दयाल) फकीर

प्रार्थना

सर्वाधिकार (निजस्वरूप) के दरबार में

हैपने के साथ में अहसास जब तक मौजूद है।
कैसे मुकिर हो सकता हूँ मैं कि नहीं तेरा नमूद है॥
जब से होश आया लगा तेरी तरफ ध्यान अपना।
देखना चाहता था मिलना चाहता था यह था जजवा अपना॥
जजवे ने यकीन दिलाया कि तू आया धर चोला दयाल।
प्रेम किया लुत्फ लिया निछावर किया तन मन व माल॥
आपने जैसा गढ़ा वैसा बन के खिलादे प्यारे अकाल।
अर्पण करता हूँ खुद को– तेरे ऐ मेरे प्यारे दयाल॥
न रूप न रंग न रेखा कोई देख सका मैं तेरी।
हालत है तो ऐ स्वामी बस इक जिन्दगी की मेरी॥
कबीर नानक राधास्वामी व दीगर संतों और आशिकों ने।
हजारों सिफतें गढ़ 2 की थी हमद व सना तेरी॥
मुझे भी चाह थी देखूँ तुम्हें करूँ सिफत व सना तेरी।
पर जब रूबरू हुआ देखा, नहीं है बाकी हस्ती मेरी॥
मुरशिद बनके तूने जो ख्याल दिया निभाया जितना निभा।
वही जताया बताया और समझाया जो समझ सकी बुद्धि मेरी॥
भेंट करता हूँ सच्चे हृदय से ले लो चरणों में हस्ती मेरी।
अपने चरणों में लगालो यही है ऐ मालिक तमन्ना मेरी॥

(दयाल) फकीर

हजूर दाता दयाल शिवव्रत लाल जी महाराज के चरण कमलों में भेंट

तेरी दया से निश्चय हुआ, तू गैर नहीं मैं गैर नहीं।
'तू' 'मैं' हुआ 'मैं' तु हुआ, तू गैर नही मैं गैर नहीं ॥
जिन्दगी के खेल में, पहलूये अदब का है दस्तूर।
वरना हकीकत है यही, तू गैर नहीं मैं गैर नहीं ॥
जात तेरी में मैं ने, निज आपा को लाकर के।
यह समझ लिया है ऐ दाता, तू गैर नहीं मैं गैर नहीं ॥
जब तक खेल खिलाना है या जब तक है कर्म का चक्कर।
समझ गया मौज की रचना है, तू गैर नहीं मैं गैर नहीं ॥
आपने संस्कार दिया था कि चोला छोड़ने से पहिले तालीम को नये ढ़ंग से प्रगट कर जाना, वह कर दिया।
नही मालूम मैंने गलत किया या ठीक किया।
बाहोशी की हालत में जो कराया मौज ने कर दिया ॥
अगर है ठीक तो भी वाह वाह, नही है तो भी वाह वाह।
मैं हर हालत में खुश हूँ, नहीं कुछ अपना है यहां
कभी जज्बा था कहता था लगालो अपने चरणों में।
हुआ मालूम अब मुझको सदा रहता हूँ चरणों में ॥
यह आलम तेरा घर है और कुल इंसान तेरे हैं बच्चे।
तू इनमें आप रहता है, हुआ है मुझको अब निश्चय ॥
खुशी से काम तेरा जो तेरे ही अर्पण अब करता हूँ।
न फल की कोई ख्वाईश है स्वतंत्र होके रहता हूँ ॥
मौज से जो होना है वह अवश्य होके रहता है।
तेरे ही आसरे पर मैं सदा अब रह के जीता हूँ ॥

— दयाल फकीर

हजूर मौल्ला मुकद्दस राय सालिगराम साहब की पवित्र याद में

लजबये इश्क बढ़ा था की थी पुकार ।
राम के मिलने की तमन्ना का था उभार ।।

ख्वाब था जिन्दगी का लाया दरे दौलत पै ।
वहां से आपके जीवन का मिला था खयाल ।।

दाता ने सार वचन नज्म नसर की थी हवाले ।
जिन्दगी में तेरे बचन थे पढ़े और संभाले ।।

दाता ने आपके नाम के लिये, अपना जीवन बर्बाद किया
मैं सोचा करता था, वह राज क्या जो आपने दिया ।।

लब खोलकर बंद किये, यह राज था बताया ।
यह कहा करते थे मुझे जो उन्होंने आप से पाया ।।

साथ ही

आपका इरशाद था फैलेगी तालीम यह संसार में ।
फिर क्या थी वह तालीम नहीं आती थी विचार में ।।

उम्र सारी खब्त में गुजारी ऐ पीरों के पीर ।
जो समझा जाहिर कर दिया करता हूं बनकर फकीर ।।

आरजू है संत मत की सारी शाखें एक हों ।
सत्संगी हिलमिल के रहें और दिल के नेक हों ।।

(दयाल) फकीर

गतांक से आगे —

यह सुन कर महमूद के मुँह में पानी भर आया। उस पर विजय पाने की लालसा चित्त में उत्पन्न हुई। सोमनाथ के लूटने की इच्छा से उसने लाखों अफ़ग़ान लुटेरे एकत्र किये और एक टिड्डी दल लेकर इस ओर चल दिया। मार्ग में जो शहर आया लूट पाट से न बचा। बन मैदानों को लांघते हुये इसने अजमेर में प्रवेश किया। राजा और नगर के जो मनुष्य भाग सके भाग गये। शेष मुनियों की दशा कुछ न पूछो। इस नगर में एक तिनका तक नहीं छोड़ा। मार्ग के सारे नगर व किले नष्ट कर दिये। महमूद की सेना थी या भयंकर आँधी थी। सारे देश में हाहाकार मच गया। अन्त में यह समुद्र के तट पर पहुँचा। एक किला दिखाई दिया। लोगों ने कहा सोमनाथ का नगर यही है। नगर वासियों को इस आक्रमण का क्या पता था। सब असावधान व सोये पड़े थे। महमूद ने डंके पर चोट मारी। हिन्दू घेर लिये गये और महमूद की सेना के बाण चलाने वालों ने चार दीवारी छुड़ा ही दी। किले से मन्दिर का रास्ता था। मुसलमान सीढ़ियाँ लगा कर व कमन्द डाल कर चार दीवारियों पर चढ़ गये। और उनके भयंकर युद्ध के शब्द से बन पर्वत तक गूँज उठे। अकस्मात राजपूतों को लज्जा आई और उठकर उन्होंने क्षणभर में चार दीवारी पर चढ़े हुये मुसलमानों को काटकर नाचे गिरा दिया। घोर संग्राम हुआ। दोनों पक्ष के मनुष्य मारे गये अन्त में उस दिन महमूद से कुछ न हो सका। किले से हट आया और रात्रि को छापा मारने का विचार किया। महमूद की सेना राजपूतों की वीरता देखकर चकित रह गई। उनके छक्के छूट गये। हिन्दुओं को जो अवकाश मिला समीप के राजाओं को पत्र लिखकर बुला भेजा। उनमें से जो निकट थे आये। इधर महमूद बहुत घबरा गया। उसको उसको आशा थी कि बिना किसी से संग्राम किये वह सोमनाथ पर अधिकार पाजायगा। मंत्री से परामर्श किया। उसने कहा 'जहाँ तक हो सके विलम्ब न कीजिये युद्ध को शीघ्र समाप्त कीजिये नहीं। तो

देश विरानाहै, यह धार्मिक स्थान है है। संभव है कि अधिक संख्या हिन्दुओं की एकत्र हो जाय।।' महमूद ने रात्रि को छापा मारा परन्तु परिणाम अच्छा नहीं हुआ। दूसरे दिन उसने सारी सेना के बीच में खड़े होकर बड़ा प्रभावशाली व्याख्यान दिया और उत्साह दिलाया। धर्म का विचार, बैकुन्ठ की आशा शहीद होने का प्रलोभन, विचित्र प्रभाव रखते हैं। मुसलमानों ने मिलकर इस प्रकार आक्रमण किया कि बात की बात में पाँच हिन्दू मारे गये जो शेष रह गये उनके पग नहीं टिके। पीछा करने वालों ने कोसों पीछा किया मुरदों और घायलों का फेंटा, टटोला और अपनी जेबें भरी इतना समय कहाँ था कि कोई किसी को पकड़ता और इसके सिवा लाखों हिन्दु ईरान व ग्ररान के बाजरों में भरे हुये थे। राजपूत बड़ी वीरता से लड़े परन्तु बहुत कम थे और सब के सब मारे गये। महमूद ने विजय का डंका बजाते हुये किले में प्रवेश किया और उस पर अपना झंडा गाढ़ दिया। जिस समय उसने मन्दिर देखा, आँखें खुल गईं। प्रत्येक स्तम्भ संगमरमर का गढा हुआ था और नीचे से ऊपर तक जवाहिरों से जड़ा हुआ था। महमूद मन्दिर में आया। ब्राह्मणों ने प्रार्थना की कि मूर्ति को हानि न पहुँचाई जाय, परन्तु महमूद ने एक नहीं सुनी। ५ गज की लम्बी मूर्ति को गुर्ज से तोड़ डाला। इसके भीतर जवाहिरों का इतना बड़ा ढेर निकला जिसका कोई मूल्य ही नहीं मगाया जा सकता। वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। मूर्ति के दो टुकड़े क्के मदीने में भेजवा दिये। एक जामा मसजिद में दूसरा दरबार के द्वार पर डाल दिया जिससे वह पांवों से कुचला जाय और अपमान होता रहे। इस बार की लूट से वह इतना माला माल हो गया कि वह जीवन भर की लूट को भूल गया।

इसका सारा जीवन धन के एकत्र करने में व्यतीत हुआ। कितने कितने लाख मनुष्यों के वंश को इसने धन के कारण नष्ट कर दिया। कितने लाख अनाथ बालकों और विधवाओं को इसके कारण बिलाप

करना पड़ा। कितनी बस्तियाँ, ग्राम नगर, कसबे जलाये गये और वह केवल इस लिये कि धन प्राप्त हो। अन्त इसका परिणाम क्या हुआ। वह एक मुसलमान इतिहास कार के लेखानुसार तुमको सुनाते हैं। वह लिखता है—"१०३० ई० में वह बीमार पड़ा, रोग जान घातक था, निराश हो गया। हुक्म दिया सारे जवाहिर खाने व संपत्ति के खजाने दरबार में सजाओ। भला वह घर में वह कब सजाये जा सकते थे। नगर के बाहर तम्मू खेमे शामियाने और परदे खड़े किये गये। हजारों लाखों ताड़े अशरफियाँ की थैलियां, शीशे काँच व बिल्लोर की डिब्बियों में लाल, जवाहिर, मोती, जड़ाऊ ताज रक्खे गये। जड़ाऊ तख्त, सोने चाँदी की कुर्सियां सब क्रमानुसार रखी गईं। एक विचित्र प्रदर्शनी थी। महमूद की दशा शोचनीय थी निर्जीव मूर्ति बना हुआ था। पालकी में लेटा हुआ अपनी संपत्ति को देखता रहा, जिसके लिये जीवन पर्य्यन्त हत्या-काण्ड करता था। मुखाकृति तथा दृष्टि से निराशा प्रकट होती थी। तकियों के बल सेवकों ने बगल में हाथ देकर बैठाया। दुर्बलता के कारण माथे पर पसीना आ जाता था- जिसको वह रुमाल से पोंछता जाता था, सब लोग हताश होकर खड़े थे। महमूद ने पहिले दरवा को निराशा की दृष्टि से देखा। फिर नकद व जवाहिरात, जो ईश्वर के प्राणियों के कलेजे में छुरी भोंक कर ऐकत्र किये गये थे। पर दृष्टि डाली, परन्तु जिस ओर दृष्टि पड़ती थी उठ न सकती थी। ठंडी साँस भरता था और रह जाता था फिर आज्ञा दी, रथ खाना इत्यादि के सामान को भी एकत्र करो। तब सोने चाँदी का जड़ाऊ सामान आभूषण व जीन इत्यादि भी आये। इअकी अधिकता क्या वर्णन हो। दूर-दूर तक बन पर्वत जगमग-जगमग करने लगे। पालकी है चढ़ कर उनको देखा। गहरी २ साँस ली, फूट-फूट कर रोया, परन्तु शोक! हाथ न उठा, जो पैसा किसी को देता। इस प्रकार उसने 'जान दी और इस संसार

इससे अधिक शोचनीय कहानी और क्या हो सकती है। यह ऐसे जीवन का परिणाम है जिसको सम्पत्ति की मृग तृष्णा ने मार दिया था। कैसे होनहार और आशामय कीवन का निकृष्ठ परिणाम हुआ।

कबीर साहब ने क्या उत्तम कहा है :—

सातों शब्द जो बाजते, घर-घर होते राग।
ते मन्दिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग॥
ऊँचा महख चुनावते, करते होड़म होड़।
सुवण कली ढलावते, गये पलक में छोड़॥
जनम मरण दुख याद कर, कोड़े का निबार।
जिन-झिन पंथों चालना, सोई पंथ सँबार॥

भूलो नहीं ! एक दिन संसार को छोड़ना है। कोई नहीं जान सकता, कब छोड़ना होगा, सुनो गुरु की वाणी क्या कहती है :—

कबीर क्यों है गरभिया, काल ने पकड़े केश।
ना जानूँ कित मारसी, क्या घर क्या परदेश॥
आज काल के बीच में, जंगल हो गया वास।
ऊपर-ऊपर पल फिरैं, ढोर चरेंगे घास॥
हाड़ जले ज्यों लाकड़ी, केश जले ज्यों घास।
सब जग जलता देख कर, भये कबीर उदास॥

मदिरा की मृग तृष्णा

मदिरा अग्नि का जल है। जो मनुष्य इसका पान करते हैं, उन का शरीर, हृदय व मस्तिष्क सब चलने लगते हैं। इस दुष्ट के निकट भूल कर भी नहीं जाना। जिसको वह वशीभूत कर लेती है फिर उसको जीते जी निकम्मा व बेकाम कर देती है।

मदिरा बुरी वस्तु है, परन्तु संसार में ऐसे मनुष्य भी मिलेंगे, जो जो इसकी प्रशंसा करते हैं। इस प्रकार के मनुष्यों में से प्रायः ऐसे भी होते हैं जो इसके अवगुणों को छिपाते हुये कविता और अलंकार में उसकी प्रशंसा करते हैं।

दूसरे वे लोग हैं जो अपनी त्रुटियों पर परदा डाल कर मदिरा की प्रशंसा के पुल बाँधते रहते हैं। इनका कथन है कि "मदिरा यदि समता से पान की जाय तो औषधि का काम देती है। मदिरा से चित्त की एकग्रता होती है। मदिरा ध्यान को दृढ़ करती है। मदिरा मन बहलाने की प्रमाणित औषधि है। मदिरा के नशा की अवस्था में काम काज खूब होता है।"

पहिली मण्डली का उत्तर देना व्यर्थ है, परन्तु यदि कोई उनको उत्तर देना चाहे तो ज्यों का त्यों दे सकता है।

और दूसरे लोग जो इसकी प्रशंसा करते हैं, उनसे यह पूछना चाहिये कि औषधि आवश्यकता के समय कभी-कभी पी जाती है या सदैव पी जाती है ? यदि वह कहें कि आवश्यकता के समय पी जाती है तो दिन प्रतिदिन मदिरा पान करने की क्या आवश्यकता है। और यदि कहैं कि प्रति दिन पीना चाहिये तो फिर औषधि नहीं रहती, किन्तु आहार बन जाती है। मदिरा और समता यह न कभी हुआ न हो सकता। तनिक इसको मुँह से लगने दो फिर एड़ी से चोटी तक अपना अधिकार जमा लेती है और समता हो जाने पर फिर अधिक पीने की इच्छा होती है। एक मनुष्य ने दो चार दिन तक विशेष मात्रा से पी, अब उसकी समता हो गई और आनन्द नहीं मिलता। विवश उस में अधिकता करनी पड़ी और क्रमशः इसी भाँति वह स्वयं बढ़ जाती है और बढ़ती चली जाती है, यहाँ तक कि प्राण तक ले लेती है और इससे पीछा छुड़ाना कठिन हो जाता है।

जिनका यह भाव है कि मदिरा से मन बदल जाता है वह निरे मूर्ख हैं। यह सत्य है हम बहुधा ऐसे शब्द सुना करते हैं।

बनोश मादा कि अध्याय गम न ख्वाहद माँद।
चुना नमाँदो चुनी नीज हम ख्वाहद माँद॥

परन्तु इस प्रकार के शब्दों से भ्रम के अतिरिक्त और लाभ नहीं। मान लीजिये एक मनुष्य को किसी प्रकार की चिंता है।

उचित तो यह है कि वह उसको औषधि तथा युक्ति सोचता और मर्दों की भाँति काम करते हुये उसकी जड़ काटकर फेंक देता। यह तो हुआ नहीं ओछे, क्रूर व दुष्टों की संगति में जा-जा कर मदिरा पान करना आरम्भ कर दिया। आदि में तो मदिरा की गर्मी के कारण चित्त में जो वेसुध होने का स्वभाव आने लगा, समझे कि मन बहल रहा है। यह विचार नहीं हुआ कि दुःखों का सिलसिला बढ़ रहा है। आज थोड़ी पी, दो चार दिन पीछे जब समता हो गई इसकी मात्रा अधिक करनी पड़ी। वह चढ़ गई और उस से भी अधिक मात्रा में हो गई। अब न काम है न काज। जब देखो मदिरा को धुन मदिरा बिना क्षणभर के लिये चैन नहीं। दुष्ट इस भांति ग्रसित किया कि उस से छुटकारा नहीं। मदिरागामी काम धन्धे के तो योग्य नहीं रहे। पहिले घर जो पूँजी थी मदिरा की भेंट हो गई। फिर ऋण लेकर पीने लगे। परिणाम यह हुआ कि घर का जो माल असबाब था सब चौपट हो गया। रहने का भी ठिकाना न रहा। लड़के वाले भूखे मरते हैं। स्त्री चिन्तित है, माता दुखी है, बाप रोता है हाय बेटा! हाथ से गया। यह प्रभाव मदिरा पीने वाले बेटे का दूसरों पर पड़ा। उसकी जो स्वयं अवस्था हुई वह करने योग्य नहीं। मन अचेत होते-होते सोचने समझने के योग्य नहीं रहा, बुद्धि मारी गई, सिरमें चक्कर आते हैं, मस्तिक नष्ट, कलेजा बिगड़ गया, पाचन शक्ति भी विदा हो गई, आँखों से दिखाई नहीं देता, हाथ पांव में कंप कंपी, शरीर से दुर्गन्ध निकली रहती है। कोई पास नही बैठने देता है। सब लोग थू-थू दूर-दूर करते हैं। बाहर वालों को तो घृणा होनी चाहिये, घर वाले भी उससे कोसों दूर भागते हैं। अब कोई मदिरा पीने वाले से पूछे—"भाई! दुख में मन बहल गया था कि मन दुःखी हो गया और अवगुण तो एक अवगुण वाले मनुष्य को नष्ट कर देता है। शराबी अपने घर बार सम्बन्धी कुटुम्बी तथा संपत्ति

मौत मर जाता है और संसार को चेतावनी की शिक्षा दे जाता है।

शराबी से अधिक पतित व निन्दनीय कोई मनुष्य नहीं है। दूसरे तो अवगुण के कारण औरों की दृष्टि से गिर जाते हैं यह स्वयं अपनी दृष्टि से गिरता है और फिर ऐसा गिरता है कि संभल नहीं सकता।

जिस समय मैं पहले पहल लाहौर आया था, मेरे एक सम्बन्धी श्री मुन्शी मदन गोपाल पाण्डे जी साहेब रईस गोरखपुर ने एक महाशय से मिलने के लिये पत्र लिखा था। मैं उनसे मिलने के लिये गया। बड़ी कठिनाई से ऊपर से नीचे आये। हाथ पांव में कंपकपी, दृष्टि से निराशा प्रकट होती थी, मुँह पर उदासी छायी थी। मैंने हाथ मिलाया, उनका हाथ अग्नि के समान गर्म था और कांप रहा था। मैंने उनके रूप को गहरी दृष्टि से देखा, लजा गये। बोले—"क्या करूँ हजरत! शराब खाना शराब ने यह दुर्गति बना रक्खी है। प्रातःकाल से लेकर रात्रि के ११ बजे तक पीता रहता हूँ। जब नींद आ जाती है तब यह मुंह से छूटती है। इसके बिना न लिखना न न पढ़ना न बोलना न बात चीत करना। मुझे बड़ा दुःख हुआ। उचित नहीं समझा कि उनको कुछ कहता। चुप! थोड़ी देर के लिये मिलमिला कर चला आया और मुन्शी मदन गोपाल जी को लिखा कि आपने अच्छे आदमी से मिलने के लिये कहा। उस तिथि से फिर मैं उनके घर नहीं गया। मार्ग में जब कभी मिले सर नीचा किये हुये मिले, इन की अवस्था का कोई क्या वर्णन करे। ईश्वर की दया से बड़े योग्य पुरुष हैं। कभी-कभी आय भी अधिक हो जाती थी परन्तु सब कलाल के घर जाती थी। बाल बच्चों का बड़ी कठिनाई से निर्वाह होता था। अब तो और भी दुर्दशा है। न सन्तान को शिक्षा दे सके, न स्वयं अपने जीवन को संसार में सम्मानित कर सके। मारे-मारे फिरते हैं और अपनी अवस्था पर आठ-आठ आँसू रोया करते हैं। परन्तु इस दुष्ट से पीछा नहीं छूटता। जो लोग मदिरा में समता रखने की सम्मति देते हैं वह तनिक इनकी दशा

देखें, ईश्वर किसी शत्रु की भी ऐसी दुर्दशा न करे।

शराब का भूत बहुत बुरा होता। जो मदिरा पान करता है उस की किसी बात का विश्वाश न करो। जब उसको अपने तन की सुध नहीं तो स्वात्माभिमान, निश्चय अथवा दृढ़ता कहाँ होगी और ऐसी अवस्था में तो वह निकृष्ट से निकृष्ट और धूर्त से धूर्त पशुओं से भी घृणित है। न उसका कुछ कर्म होगा, न धर्म होगा। न उसको दीनता का विचार न श्रेष्ठता का भाव, न पवित्रता का ध्यान न अपवित्रता की चिंता, न स्वच्छता और मलीनता का विचार। दीन दुनियाँ दोनो से गया, धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का। न इस से घर वालों को लाभ न देश वालों का उपकार। अपने जीवन में ही हजारों मुर्दों से निकृष्ट हो जाता है।

यह कहने सुनने की बात नहीं। प्रत्येक स्थान पर जीवित उदाहरण मदिरा पान करने वालों के उपस्थित हैं। शहरों में तो सायं काल तनिक कलालियों के समीप जाकर इनका तमाशा देखो। शराब पी, मस्त हो गये, अब चल फिर नहीं सकते। जगह से खिसकना दुर्लभ है। हाथापाई कर रहे हैं। एक का पैर दूसरे के हाथ में, तीसरे का सिर दूसरे के पैर में, मोरी और नालियों में गिरे जा रहे हैं, मनुष्य पकड़े हुये लिये जा रहे हैं. पैरों में खड़े होने या हिलने डोलने की शक्ति कहाँ! चार मनुष्य ने मिल कर थाम रक्खा है, उस पर भी आप उलूल जलूल बक रहें हैं, वह शराब पीने का आनन्द है।

जो मनुष्य मदिरा को एकाग्रता का मूल साधन समझते हैं, वह भ्रम में हैं। जो मदिरा को अधिक काम कराने की बूटी कहते हैं वह कितने भ्रम में हैं। मदिरा पान करने से शरीर में एक प्रकार की गर्मी आ गई, मनुष्य ने कुछ अधिक काम कर लिया परन्तु कब तक शरीर भी एक प्रकार की कल है अधिक समय तक वह कल चल सकती है, जिसके यन्त्र अथवा पुर्जे सुगमता से नियमानुसार चलते हैं, परन्तु यदि कहीं तुम ने किसी कल को अधिक शक्ति वाले इञ्जन

के साथ लगा दिया, यह अधिक तेजी से चलने लगी, परिणाम यह हुआ कि पुर्जे शीघ्र घिस जायेंगे, कल ढीली पड़ जायगी, वे काम हो जायगी और फिर अन्त में उसको फेंक देना पड़ेगा। वह मरम्मत करने योग्य भी न रह जायगी। यदि मनुष्य चाहे कि मैं शीघ्र मर जाऊँ तो मदिरा पान करे। यह घर का नाम करने वाली शरीर की कल को थोड़े ही दिनों में बिगाड़ देती है और वह बेकाम हो जाता है।

यों तो मदिरा प्रत्येक स्थान पर हानिकारक है परन्तु हमारे देश में विशेष कर अधिक हानि पहुंचाती है। यह देश गर्म है। यहाँ तो मनुष्य जितना ही साधारण व सादा रहे उतना ही अधिक सुख पावेगा। यहाँ तुमको मदिरा पान करने की आवश्यकता ही क्या है! क्या मदिरा के बिना तुम्हारा काम नहीं चल सकता? वह एक दिन दम व्यर्थ और अनावश्यक वस्तु है। छोड़ो उसके झगड़े को नहीं यह दुष्ट बिना प्राण लिए तुम्हारा न छोड़ेगी, और केवल तुमको ही नष्ट न करेगी वरन् तुम्हारे बाल बच्चे स्त्री सम्बन्धी ऐसे नष्ट हो जायेंगे, जैसे गेहूं के साथ घुन पिसता है। शराबी का घर उसके जीवन में ही श्मशान भूमि बन जाता है, औरों का घर तो पीछे श्मशान बनता बनता है। जिसके जीते जी ही उसकी स्त्री विधवा कही जाय वह शराबी है। और जिसके बच्चे जीवन में ही अनाथ ही जाँय, वह शराबी है। इस मनहूस का प्रातःकाल उठकर कभी नाम न ले। इसकी संगति से सदैव बचता रहे। इसकी बात न सुने। इसका शरीर ही नर्क की अग्नि की भाँति प्रत्येक समय चलता रहता है, जिसमें उसकी हड्डी नस नाड़ी सब जला करती हैं। यह अपने जीवन में ही नर्क भोकता है।

साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या है, शराब ने बादशाहों तक के घर नष्ट कर दिये हैं और उनको सुख चैन से नही रहने दिया; क्योंकि इस दुष्ट में यह अवगुण है कि स्वतंत्र को परतन्त्र, सावधान को असावधान, स्वास्थ्य वाले को अस्वास्थ्य, हट्टे कट्टे को दुर्बल, धनाढ्य को निर्धन, कगाल; संताम वाले को निपुत्र, विद्वान को मूर्ख, परिश्रमी को आलसी बना देते है। एक अवगुण हो तो कोई कहे। यह अवगुण से भरो हुई है और मनुष्य कुछ इस प्रकार इसके हाथों बिक जाता है कि फिर जीते जी उसके पजे से नहीं छूटता।

शेष आगामी अक में

ख्याल (भावना) का महत्व

प्रथम वचन

विषैला प्रभाव

मनुष्य की उन्नति और अवनति केवल उसके ख्याल पर निर्भर है। जिसका ख्याल अच्छा है वह अच्छा होता है, जिसका ख्याल बुरा है बुरा बन जाता है और जिसके ख्याल में अच्छाई और बुराई दोनों हैं वह भला बुरा दोनों ही है।

भलाई और बुराई वास्तव में चित्त की प्रवृति के परिणाम हैं। यह प्रवृति कई प्रकार से उत्पन्न होती है।

प्रथम चित्त की प्रवृति अपने माता पिता के स्वभाव, कर्म और संस्कार से सन्तान को पैतृक सम्पति के रूप में प्राप्त होती हैं। यह भी सम्भव है कि वह माता पिता से बीज रूप में आई हो और अनुकूल परिस्थितियां प्राप्त करके अधिक उन्नति कर गई हो। माता पिता में जो रोग होता है वह सन्तान में भी आ जाता है। अधिकाँश में चाहे माँ-बाप के जीवन में वह निर्बल रहा हो लेकिन सन्तान में आकर वह बलिष्ट हो जाता है और बुराई भलाई, दुख-सुख दोनों ही को चलायमान करने लगता है और उसके जीवन की विशेषता बन जाता है।

दूसरे इसकी उत्पत्ति पठन पाठन और संगत से होती है। जो लोग भले और बुरे की संगत में बैठते है. जाने या अनजाने इसके प्रभाव उनमें आ जाते हैं और उसी तरह के आचारण अथवा व्यवहार करने लग जाते हैं। बुरी संगत में बैठने और बुरी पुस्तकों के पढ़ने से मनुष्य में वृणित प्रकार के दोष आजाते हैं। इनसे जहाँ तक बचा जाय इतना ही अच्छा है; परन्तु इसमें एक रहस्य है। जो व्यक्ति भय के कारण बुराई से बचता रहता है। वह गुप्त रूप से उसे अपने अन्तर में भरता भी रहता है। कभी न कभी उसे उससे हानि उठानी पड़ती है। इसलिये जो व्यक्ति यह चाहे कि बुराई से बिल्कुल बचा

रहे वह निडर होकर इस प्रकार उसका सामना करे कि वह उसे भीतर और बाहर अपने ऊपर अधिकार न कर ने दे केवल वाह्य रूप मे बचते रहने से, यदि मन में चोर है, तो उसके अन्दर कभी-न कभी जगह पाने से रुक न सकेगा और उस पर अपना अधिकार जमा लेगा। बुराई की निन्दा करना एक प्रकार से इस समय में सामाजिक प्रथा हो गई है। लोग शराब की बुराई औरों की देखी-देखी करने को तो करते हैं परन्तु मन में कुछ और रहता है। उसका परिणाम यह होता है कि इस प्रकार निन्दा करने वालों में से बहुत से मनुष्य शराबी हो जाते हैं और जो उसका फल होता हैं उसमें बुरी तरह फँस जाते हैं। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि हर प्रकार की बुराई से बचो अवश्य मगर उसकी निन्दा जरूरत के बिना न करो; ताकि उसके ख्याल तक को चित्त में स्थान पाने का अवसर न मिले। हमको केवल अच्छा बनना चाहिये और वृथा औरों के साथ बुराई की छेड़छाड़ से बचकर रहना चाहिये।

तीसरे बुराई की उत्पत्ति समय की परिस्थितियों, घटनाओं और प्रभावों से भी होती हैं। जिस समय देश या जाति में किसी विशेष प्रकार की दोष युक्त हालत और विषैली घटनायें प्रवेश होने लगती हैं तो देश के निवासी जाने या अनजाने उन्हें ग्रहण कर लेते हैं और बुरे बन जाते हैं। यों समझो कि यदि कहीं महामारी फैल जाती है तो वायु में उसका असर फैल जाता है। देह और मन में चूँकि उस ओर आकर्षित होने की प्रकृति होती है, वह सहज में ही उससे प्रभावित होकर बीमार पड़ जाते हैं और कष्ट भोगते है।

चौथे बुराई का मनुष्य के मन में अन्न, जल, वस्त्र और दूसरों की वस्तुओं के स्पर्श से भी होता है। किसी ऐसे व्यक्ति का छुआ हुआ अन्न न खाओ जिसमें किसी प्रकार की छूत की बीमारी है, वर्ना तुमको भी रोगी होने का भय रहेगा। किसी बुरे आदमी के कपड़ों को शरीर पर न डालो, वरना उसके अन्दर छिपे हुए प्रभावों को अपने अन्दर ले लोगे और जिस व्यक्ति को बुरा, दुर्भावना वाला और क्रोधी समझते हो तो उसके किसी सामान से हाथ

मत लगाओ अन्यथा छूते ही उसके गुण तुम में आने लगेंगे।

इस प्रकार और भी बहुत-सी बातें हैं, जिनसे बचकर रहने की आवश्यकता है। विवेक विचार वाला मनुष्य आप अपना बचाव और कर सकता है।

इसी प्रकार जो लोग पूरे संसारी या दुनिया के पुजारी हैं, उनकी भी संगति से संसार का रोग ग्रस लेता है। यह भी त्यागने योग्य हैं।

—o—

दूसरा वचन

संसार क्या है।

इस लोक में जो कुछ पृथ्वी, जल आदि व जीव-जन्तु मनुष्य आदि दिखाई दे रहे है संसार नहीं हैं। संसार के समझने में ज्ञानी-से-ज्ञानी मनुष्य भूल करते हैं। कोई स्त्री पुत्रादि को संसार मानते है, कोई धन, दौलत, मान, प्रतिष्ठा को संसार कहता है। किसी का और कुछ विचार रहता है परन्तु असलियत की समझ से सब ही वंचित हैं। स्त्री पुत्र के त्यागने से संसार का त्याग नहीं है। न धूनी रमाने जंगल की खाक छानने या उद्यम छोड़ने ही में संसार का त्याग है। हम तो इनको संसार भी नहीं कहते।

प्रथम संसार को खूब समझ लो। जब संसार का अर्थ समझ में आ जायगा तब तुमको ग्रहण और त्याग का अवसर मिलेगा। जब तक उसके रूप को नहीं समझा है तब तक तुम किसका त्याग करोगे और किसको ग्रहण करोगे। सोचना समझना आवश्यक है। मनुष्य की परिभाषा भी यही है कि वह सोचने-समझने वाला हो। मनु की केवल वह समझदार सन्तान मनुष्य कही जा सकती है जिसमें विवेक विचार की शक्ति है। अविवेकी मनुष्य को

मनुष्य कहना भूल है। वह मनुष्य की आकृति रखता हुआ पशु है। अभी इस सोच-विचार की शक्ति उत्पन्न नहीं हुई है। जब यह समझ आ जाएगी, तब उसे मनुष्य कहना सार्थक होगा। कबीर साहब की वाणी है:—

गुरु पशु, नर पशु, त्रिया पशु, वेद पशु संसार।
मनुष्य सोई जानिये, जाहि विवेक विचार॥

जब तक किसी में विवेक नहीं है उसे न संसार की समझ है और न उसके धर्म कर्म के साधन का बड़प्पन है। बिना समझे बूझे हुये काम का परिणाम कुछ नहीं होता।

संसार उसे कहते हैं जो सार के साथ रहता है। यह शब्द संस्कृत के दो शब्दों से निकला है—सम (साथ) और सार (तत्व) जो वस्तु कि सार या तत्व के साथ रहे उसका नाम संसार है। यह संसार का अर्थ है। इससे अधिक श्रेष्ठ कार्य और नहीं किये जा सकते।

अब यहाँ सोचने के लिये दो शब्द मिल गये। एक तो सार या तत्व, दूसरे इस सार या तत्व के साथ रहने वाली वस्तु जिसे तुम जो चाहे तो संसार कह सकते हो। सार और असार दो शब्द हुये। **सार में असार का भ्रम संसार है।**

सार सत् है। सार तत्व है। असार असत है। असार अतत्व है। **सार में असार को मिलना संसार** है।

सार क्या है? और असार क्या है? सार वह है जो अपना आस्तित्व स्वयं रखता है। असार वह है जिसका अपना अस्तित्व नहीं है बल्कि वह अपने अस्तित्व के लिये किसी अन्य अस्तित्व का या तो पराधीन है या उसके भ्रम का प्रतिबिम्ब है। यदि वह असली अस्तित्व दूर हो जाय तो फिर उसकी अपनी अलग सत्ता या अस्तित्व नहीं रहता, और न उसका पता रहता है। यह असार है। और सार में असार को मिला रखना संसार है।

सूर्य्य स्वयं एक सत्ता है। धूप अपनी सत्ता नहीं रखती बल्कि अपनी सत्ता के लिये सूर्य की सत्ता के आधीन है। तुम उदाहरण के रूप में यहाँ सूर्य्य को सार और धूप को असार मान सकते हो। सूर्य के साथ धूप की सत्ता मिलना और धूप ही को सार समझना संसार है। सूर्य्य न होता तो धूप का रहना असम्भव है। धूप सूर्य के आधीन है; इस कारण यह असार कहलाती है। इसके सिवाय वह और कुछ नहीं है। सूर्य और उसके साथ ही धूप की भी अलग सत्ता मानना संसार है। यह संसार की परिभाषा है।

तुम हो। तुम्हारी सत्ता है। परन्तु तुम में जो शक्ति और योग्यता है वह स्वयं तुम उसे अलग मानते हो और दोनों के भेद को न समझ कर गपलचौथ करते हो। यह ही संसार है और तुम्हारा इस शक्ति और योग्यता का अनजाने अभिमानी बनना संसार का कार-बार और संसार का व्यवहार है।

शक्ति शक्तिवान से पृथक नहीं है और न अपनी अलग सत्ता रखती है। यदि इसको भली प्रकार समझ लो तो तुमको अभी सार और संसार की समझ आ जाय, मगर विवेक न होने के कारण तुम शक्तिवान को अलग और शक्ति को उससे गलग मान कर उस शक्ति की पूजा करते हो और शक्तिवान के ख्याल को बिल्कुल त्याग कर देते हो। इससे भ्रम पैदा होता है। सार वस्तु में उसके गुण को मिलाकर मिश्रित बना लेते हो। इस कारण से संसारी कहलाते हो।

इसी प्रकार यदि विचार करते चलो तो तुमको असलियत का ज्ञान प्राप्त हो जाय। सार और असार और इनकी मिश्रित व कल्पित सूरत, संसार का ज्ञान रखकर असार को छोड़ दो और सार को ग्रहण कर लो तो अभी क्षण मात्र में तुम्हारा संसार अलोप हो जाय और तुम असलियत के समझने से वंचित न रहो। लेकिन तुम विवेक से काम न लेने के कारण भ्रम में डूबे रहते हो। इस कारण तुमको दुख होता है, आवागवन के चक्र में फँस जाते हो और उससे छुटकारा कठिन हो जाता है। इन संक्षिप्त शब्दों पर विचार करो।

जहाँ यह भ्रम दूर हुआ कि फिर संसार न रहेगा।
यह सार, असार और संसार की कथा है।

तीसरा वचन

तुम्हारा संसार

प्रत्येक जीव की दुनिया दूसरे जीव की दुनिया से भिन्न होती है। तुम एक जीव की दृष्टि से दूसरे जीव से अलग हो। तुम्हारी शान, तुम्हारा जीवन तुम्हारा कार-व्यवहार और तुम्हारा रंग-रूप दूसरों से मिलता-जुलता नहीं है। सोचो, विचारों, तब ही तुम इसे समझ सकोगे। इस रचना में रेगिस्तान के दो परमाणु, समुद्र की दो बूँदें, पिता के दो पुत्र, वृक्ष के दो पत्ते, आग की दो चिनगारी, वायु के दो झोंके, फूलों की दो सुगन्धित परस्पर एक समान नहीं है और न किसी तरह एक सी हो सकती हैं। हजार प्रयत्न करो पर इनको परस्पर एक समान और एक से न पाओगे, क्योंकि अनेकता या बहुतायत के मंडल में समानता होना असम्भव है। तुम और हो। दूसरे और हैं। तुम्हारा संसार दूसरों के संसार से पृथक है। संसार क्या है ? इस रचना के धोखे में पड़ो। तुम्हारी स्त्री दूसरे कों स्त्री नहीं है और न तुम्हारे बाल-बच्चे दूसरों के बाल-बच्चे हैं. इत्यादि। इसी दृष्टि से कहा जाता है कि सब की दुनिया अलग-अलग है।

जिसकी माया उसके साथ ! जिसके विचार उसी के हृदय से सम्बन्धित जिसके गुण उसी के आधीन ! जिसके कारबार उसी के परिश्रम से सम्बन्धित। भाव और विचार की दृष्टि से तुम किसी एक से भी मिलते-जुलते नहीं हो। फिर तुम्हारा संसार दूसरे के संसार से भिन्न हुआ या नहीं ? सोचो, ताकि यह विवेक तुम में प्रारम्भ से ही उत्पन्न हो जाय। इसी विवेक का उत्पन्न होना तुम्हारे अध्यात्मिक जीवन की नींव डालने वाला स्तम्भ बनेगा।

तुम में योग्यता है । तुम्हारे पास धन है । तुमको मान-प्रतिष्ठा प्राप्त है । तुम्हारी योग्यता, तुम्हारा धन, तुम्हारी मान-प्रतिष्ठा तुम्हारे ही आधीन है । परन्तु तुम इसे अपने से पृथक मान कर और मिथ्या भ्रममें पड़-कर मेरा-तेरा पना करते हो, और कल्पना की ऐसी रस्सी बना लेते हो कि उसी से जकड़ जाते हो । इस कारण तुम आप अपने संसार के वशीभूत होकर अशान्ति मोल ले लेते हो । यह सब तो जैसे हैं वैसे हैं मगर इनमें मन क्यों लगाते हो ? मन लगाया नहीं कि अशान्ति हुई नहीं । सूर्य के आधार पर किरणें रहती हैं । वह रहा करें । सूर्य का क्या बिगाड़ती हैं ! समुद्र में हिलोर उठा करें । समुद्र को क्या हानि पहुंचाती हैं ! मगर नहीं । यदि एक सूर्य अपनी एक-एक किरण के वृथा के भ्रम को चित्त दे या यदि एक समुद्र अपनी एक-एक हिलोर की नाप-तोल के भ्रम में पड़ा रहे तो सिवाय अशान्ति के उसका परिणाम क्या होगा ? वह जितना इनमें चित्त लगाता रहेगा उसी सीमा तक ख्याली तौर पर अपने से पृथकता व्यर्थ में दुख का कारण होता जायगा, सूर्य सूर्य न रहेगा और न समुद्र समुद्र बनेगा । यह रहस्य है जिसको हृदयांकित करना है ।

मेरा-तेरा पना करते रहना संसार का व्यवहार है । पर दुख-दाई नहीं न बाल-बच्चे दुखदाई हैं । दुख तो मेरे-तेरे पने में है । तुम कुर्सी पर बैठते हो और जब जी चाहता है कुर्सी पर से उठ खड़े होते हो । कुर्सी तुमको बांध तो नहीं रखती । लेकिन अभी मेरा-तेरा पना करो, कुर्सी स्वतः ही बन्धन का कारण हो जायगी । लड़ाइयां होंगी, झगड़े होंगे, मुकद्मा चलाने लगोगे, झूठी गवाही दिलाने लगोगे और यह कुर्सी तुमको खा जायगी । तुम खो जाओगे और बैठे-बिठाये हजारों ही प्रकार के कष्ट मोल ले लोगे और जो वस्तु सुख का साधन थी, वह दुख का कारण बन जायगी । कुर्सी को समझो । यह तुम्हारे ही संसार का एक अङ्ग है । इसे कुर्सी ही बनी रहने दो । बैठो उठो, तोड़ो, बुनो, बुनवाओ, यह तुम्हारा बिगाड़ती क्या है, लेकिन जहाँ भूल में पड़कर मेरा-तेरा पना करने लगे सुख से स्वयं ही कोसों दूर जा पड़े ।

इसी प्रकार अपने संसार को समझकर उसे चित्त न दो। चित्त यदि लग ही है तो अपने आपे में लगाओ ताकि मेरा-तेरा पना गले का हार न होने पावे। घर, द्वार, माल, खजाना, मान-प्रतिष्ठा कोई भी दुखदाई नहीं हैं, लेकिन जब तुम मेरा-तेरा पना करके उनको सुख का साधन मानने लग जाते हो तो फिर उन्हीं के पेट से दुख पैदा होता है और उस दुख के पैदा करने वाले तुम आप ही ठहरते हो। इसे गुरु के सत्संग में दो-चार, दस-बीस दिन महीने-दो महीने बैठकर समझलो और इस भ्रम के जाते ही तुम्हारे छुटकारे की सूरत पैदा हो जायगी।

मोर तोर की जेवरी, बट बांधा संसार।
दास कबीरा क्यों बँधे, जाके नाम अधार॥

—+—

चौथा वचन

तुम और तुम्हारी दुनियाँ

तुम्हारी दुनिया तुम्हारे लिये है। तुम अपनी दुनिया के लिये नहीं हो। तुमने अपनी दुनिया को आप बनाया है। तुम्हारी दुनिया ने तुमको नहीं बनाया। वह तुम्हारी दुनिया तुम्हारा भोग है। तुम इस दुनिया के भोग नहीं हो। तुम कुर्सी पर बैठते हो, कुर्सी तुम पर नहीं बैठती। तुम घर में रहते हो, घर तुम में नहीं रहता। स्त्री पुत्र यह सब तुम्हारे लिये हैं तुम इनके लिये नहीं हो। रूपया पैसा तुम्हारे खर्च के लिये हैं। तुमको तुम्हारा पैसा खर्च नहीं करता इत्यादि। लेकिन भूल में पड़कर कर क्या रहे हो? तुम्हारे आचरण व्यवहार और क्रिया कर्म से क्या प्रगट हो रहा है? तुम खुद अपने

आपको कुछ नहीं समझते। इन्हीं को सब कुछ मान रहे हो यद्यपि यह सब के सब तुम्हारे ही मानव विचारों से उत्पन्न हुये हैं। तुम इन पर सवारी नहीं करते उलटे इनको ऐसी शक्ति दे रक्खी है कि वह तुम पर शासन करते हैं। और उन्होंने तुमको अपने आधीन बना रक्खा है। रेशम का कीड़ा अपने ही मुख से तार निकाल कर थैली बना बैठा और उस थैली के भीतर कैद होकर उसी में फँस गया। मूर्ख अपनी कैद में आप बन्दी बन गया। यदि उसकी मौत न आये तो हो क्या ?

स्त्री तुम पर दनदनाती हुई सवार है। संसार में ऐसे मनुष्य कम नहीं हैं जो अपनी स्त्री को अपने ऊपर सवार कर लेते हैं। वह काठी कसकर चढ़ बैठती है, कोड़े लगाती है, और यह दुलकी सरपट और कदम की चाल चलने को विवश होते हैं। वह जो नाच चाहे नचाती रहे। ये बेवस हैं। कैसी विचित्र बात है। सवार नीचे और घोड़ा ऊपर ! यदि किसी से कहा जाय तो विश्वास न होगा। परन्तु हम तो खुली आँखों से देख रहे है। एक दो दस बीस नहीं बल्कि हजारों सैकडो लाखों और करोडों मनुष्य ऐसे मिलते हैं जो घोड़ा उन पर चढ़ता है। जो चाहे देख लो। पूछ देखो। और कौन जाने तुम ही स्वयं ऐसे हो। सोचो, तब यह विषय समझ में आ जायगा।

मनुष्य रूपया पैसा कमाता है। रात-दिन उसी के धन्धे में फँसा रहता है। रूपया पैसा मिलने पर भी उसे नहीं भोगता। बल्कि रुपया पैसा उसे भोगते रहते हैं। उसको तो सोचने का भी अवसर नहीं मिलता कि रुपया उसके लिये है या वह रुपये के लिये है इस प्रकार की अधिक संख्या हमारे देश के बनियों में बहुतायत से दीख पड़ेगी। यह धन का पुजारी समाज करता क्या है ! धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का ! दिन भर दुकानदारी की। रात

को उसी का स्वरुप देखता रहा। उसने अपने से उच्चतर रुपये क माना रुपये ही को सब कुछ समझ लिया। जो अपनी आँखों से आप गिरे उसे कौन उठाये! जो अपने आपको अपनी दुनिया का लट्टू पशु बनाये उसे दुख से कौन छुड़ाये!

उसी प्रकार उसकी दुनिया की प्रत्येक वस्तु उसे अपने आधीन कर लेती है और वह दीन अधीन हो जाता हैं।

==+==

पाँचवाँ वचन

ख्याल (कल्पना) की रस्सी

ख्याल मन की गति और मन के संकल्प-विकल्प की धार है। इसी धार से दुनिया बनती है। जिस प्रकार शुद्ध जल की धार किसी अधिक ठंड़े स्थान पर पहुँच कर बर्फ के रूप में जम जाती है वैसे ही ख्याल या संकल्प-विकल्प की धार महाभूतों की सूक्ष्म अवस्था में बदल जाती है।

इसकी गति उस समय तक दुखदाई नहीं होती जब तक उसके पीछे अहंकार को नहीं लगाया जाता। जितना दुख और क्लेश है वह अहंकार ही से उत्पन्न होता है। मन में घर बनाने का विचार उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होने के समय वह सूक्ष्म रहता है, परन्तु शनैः शनैः यही वस्तु ईट, पत्थर होती हुई मकान के रूप में बदल जाती है। मकान बन गया। अब उसमें कुछ दिनों तक वास करो लेकिन अहंकार और ममत्व का चित्त में स्थान न दो। तुम उसके स्वामी और भोगने वाले बने रहोगे। लेकिन ममत्व और अहंकार के आते ही जड़ और निर्जीव मकान तुम्हारी ही शक्ति और

तुम्हारी ही असलियत को लेकर मालिक और भोगने वाला बन जायगा। तुम उसके भोग और आधीन हो जाओगे और अपने आपे को खोकर स्वयं ही जड़ और निर्जीव बनने लगोगे। यह दशा अति हानिकारक है।

पशु पक्षी भी तो अपने रहने के घोंसले और बिल बनाते हैं। उनको मनुष्य की तरह इतना अहंकार नहीं होता। इस कारण इनको इस अपेक्षा से कष्ट नहीं होता परन्तु मनुष्य को दुख होता है। इसका कारण उसका अपना अहंकार है। यदि वह किंचित सँभलकर और सोचकर रहे तो विपत्तियों का शिकार कभी न बने लेकिन क्या किया जाय। वह तो उसे अनावश्यक महत्व को खो देता है और पशुओं से भी गया बीता बन जाता है।

इसी प्रकार संसार के अन्य पदार्थों के विषय में समझ लो।

यह अहंकार कल्पना की मोटी रस्सी है जो मनुष्य को जकड़कर बांध लेती है।

मैं मैं बुरी बलाय है, सको तो निकसो भाग।
कहें कबीर कब लग रहे, रूई लपेटी आग

—+—

छठवां वचन

अहंकार बुरा दर्पण है

दर्पण यदि ठीक है तो उसमें सूरत का अक्स आता है। दर्पण में यदि बाल है तो सूरत बुरी दिखाई देगी। इसी प्रकार अहंकार की भी दशा है। यदि अहंकार रूपी दर्पण अच्छा है तो इसके द्वारा आत्मा के ज्ञान की सम्भावना है। यदि वह दोषयुक्त है तो बुरी सूरत बनाकर दिखाता है और अपने ही से घृणा होने लगती है

संसार या आत्मा का दर्पण बनाने वाला कलाकार अहंकार को ही समझो। प्रथम यह तुम्हारे भावों को तोड़-मरोड़कर तुम्हारी बुरी शक्ल बना देता है। उसके पश्चात यह तुम्हारे संसार को तुम्हें दिखाता है। जो कुछ तुम अपने चारों ओर देखते हो वह तुम्हारे ही बिगडे हुये रूप का प्रतिबिम्ब है। पहिले इसे ठीक कर लो। इसके सुधार में लग जाओ।

इसके बाल ठीक कर लो। जब यह स्वच्छ और चिकना हो जायगा तब इसमें इतना विकार न रहेगा और यह प्रतिबिम्ब को अच्छी शक्ल में दिखावेगा। इससे इतनी विपत्ति न होगी।

दर्पण यदि अच्छा है तो सूरत अच्छी दीखेगी। दर्पण यदि बुरा सूरत दीखेगी। यह पहिली बात है जो हृदयाँकित करनी है।

दूसरी बात यह है कि दर्पण ठीक भी हो तो जिस तरह तुम अपनी सूरत बनाकर उसमें देखोगे उसी प्रकार का प्रतिबिम्ब (अक्स) तुम में दिखाई देगा। यदि सूरत बुरी बनाई है तो बुरी प्रतीत होगी। यदि अच्छी बनाई है तो अच्छी नजर आयेगी अर्थात हृदय रूपी दर्पण में किसी सत्पुरुष की शक्ल देखोगे तो वैसी ही नजर आयेगी।

तीसरी बात यह है कि दर्पण हजार अच्छा भी फिर भी वह तुम्हें अपने आधीन रक्खेगा और दो वस्तुयें रहेंगी। एक तुम और दूसरा तुम्हारा दर्पण। यह दुई तुम्हारी खराबी का कारण बनी रहेगी। अपेक्षित रूप से चाहे वह इतनी बुरी न हो मगर बुराई की जड़ उसमें है मालूम नहीं वह किस समय तुम्हारे विचार के मानसिक समुद्र में बुराई के भावों की हिलोरें उठा दे। उस समय फिर वही खराबी दर्पण के ठीक होने पर बनी रहेगी।

चौथी बात यह है कि दर्पण केवल बुरी-भांति मूरत बनाता है। इससे अधिक उसमें अन्य प्रकार की शक्ति नहीं है। यह उसका

स्वाभाविक गुण है।

पांचवी बात तुम्हारे सोचने की यह है कि तुम किस तरह दर्पण में सदा अच्छी ही सूरत देखते रहो ताकि बुरी सूरत न दीखे इस रहस्य का जानना आवश्यक है। सदा अच्छी सूरत का दीखते रहना उस समय सम्भव है जब मन या चित्त में किसी अच्छी सूरत काध्यान बसा हुआ हो। इस अच्छी सूरत का नाम ईश्वर, ब्रह्म, परब्रह्म, सतपद और राधास्वामी है। इन सब नामों के अन्दर अच्छाई और भलाई के दरजे हैं। इनमें से तुम जिस किसी के ख्याल को मन में स्थान दोगे उसी तरह पर अपना रूप दर्पण में देखोगे।

छठी बात यह है कि दर्पण के देखने का अभिप्राय क्या है? अभिप्राय यह है कि तुम बिल्कुल अच्छे हो जाओ। और इस प्रकार के अच्छे बनो कि बुरी सूरत लेश मात्र भी न रहे। यह दर्पण देखने का प्रारम्भिक ध्येय है। अन्तिम ध्येय यह है कि इतने अच्छे हो जाओ कि फिर बार-बार दर्पण को न देखते रहो और सार और असार, असल और नकल अथवा तुम और तुम्हारी परछाई दोनों एक हो जायँ।

सातवीं बात यह है कि असल और नकल को एक करके उसमें महावियत (लय) की अवस्था अपने अन्दर उत्पन्न कर लो।जब यह दशा प्राप्त हो जायगी तब तुमको सतपद की अवस्था प्राप्त हो जायगी और यह ही इष्ट पद है और इसी का नाम धुरपद और राधास्वामी धाम है।

यदि सात बातों को भले प्रकार हृदयांकित कर लो, तो फिर राधास्वामी मत की शिक्षा और उसका महत्व अच्छी तरह तुम्हारी समझ में आ जायगा।

—×—

सातवाँ वचन

दर्पण का उदाहरण

गाँव वालों की कहानी है। किसी बन्दर को जंगल में एक दर्पण मिल गया। उसने अपने कान बनाकर उसमें अपनी सूरत देखी। हंसा और सब जानवरों को दिखाने लगा। सब से प्रथम रीछ ने देखा। वह अपने रूप को देखकर बोला, 'अफसोस ! मैं बड़ा कुरूप हूँ और झाड़ियों में छिपने लगा।,, भेड़िये ने उसे देखकर सोचा यदि मुझमें बारह सिंघे का सिर और उसके जैसे सुन्दर सींग होते तो अच्छा होता। बारी-बारी से सब जानवरों को दर्पण दिखाया गया। किसी को लज्जा प्रतीत हुई। किसी में अशान्ति आई। किसी को किसी बात की इच्छा पैदा हुई और एक ओर से लेकर दूसरी ओर तक सब ही असन्तोषी, व्याकुल और अशान्त हो गये। शान्ति और निरभ्रान्ति दिलों से जाती रही।

बन्दर ने उल्लू को जाकर यह दर्पण दिखाना चाहा। उसने कहा—"मैंने छोड़ा यह दर्पण देखना ! जिस-जिस ने यह दर्पण देखा है, वह अपने आपे से जाता रहा। दर्पण का ज्ञान दुखदाई है। इससे तो अविद्या ही हजार गुणी श्रेष्ठ है"

सब पशुओं ने उल्लू की बात सुनकर यह निर्णय किया कि इस दर्पण को दूर कर दो। बन्दर चालाक था। उसने किसी ऐसे स्थान पर ले जाकर दर्पण को रख दिया जहाँ मनुष्य रहते थे। दर्पण उनके हाथ पड़ा। वह भी पशुओं की भांति विज्ञिप्त हो गये। कोई अपने को बुरा और दूसरे को भला मानने लगा। परिणाम यह हुआ कि सब मनुष्य एक-एक करके द्वेष मना, निर्दली और लालची बन गये और अपनी प्रशंसा करने लगे और दूसरों की निन्दा करने लगे मनमें ऐसे दूषित भाव पैदा हो गये कि वह अपने सजातियों को

अपने आधीन और आश्रित बनाने लगे और ऐसे बुरे हो गये कि पशु तो फिर भी अपने सजातियों का पास करते हैं पर यह हजारों ही युक्तियों से अपने भाइयों को सताने दबाने और दुख पहुँचाने लगे और फिर स्वयं भी अपनी बारी पर उनके पराधीन बनते गये और पशुओं से भी बुरे होते गये। यह बात अब तक मनुष्य जाति में सबसे अधिक मौजूद है और दुनिया में इनसे अधिक और कोई दुखी नहीं हैं। अपने चारों आर देखो और तुमको आप ही प्रतीत हो जायगा।

मनुष्य ने यह उपद्रव मचाया कि पिजड़े में तोते और पक्षियों को फंसा फंसा कर उनके सामने दर्पण रख दिया और आप उसके पीछे बैठ कर बोलियाँ बोलने लगा। कई धोखे में आये और मनुष्य की बोली को अपने संजातियों की बोली समझकर उसकी नकल उतारने लगे और भटक गये। इस दर्पण की सहायता से पशु उनके फन्दे में बुरी तरह से फंसे और अब स्वभाव वश फंसते जा रहे हैं। जो दूसरों को फंसाता है वह आप फंसता है। जो दूसरों को लूटता है वह आप भी लूटा जाता है। मनुष्य ने पशुओं को अपने आधीन बनाया और परिणाम यह हुआ कि खुद भी इन पशुओं के आधीन हो गया। अपनी समझ से तो वह समझता है कि मनुष्य स्वामी है और सब सेवक हैं। पर वास्तविक रूप में देखा जाय तो वह स्वयं भी पशुओं का सेवक और आधीन हो रहा है और अपने मनुष्यपने से कोसों दूर जा पड़ा है कि पशुओं के जीवन को अपने जीवन का बहुत बड़ा अंग मान रहा है। धिक्कार है ऐसी मानवता पर! लानत है इस मानवीयशील पर !!

अज्ञानी मनुष्य अज्ञानता का इतना शिकार हुआ कि पशुओं की श्रेणी से भी गिरकर मनुष्यों का शिकार बना हुआ है। एक मनुष्य भी संसार में ऐसा न होगा जो दूसरे मनुष्य को मार-मार कर न खाता हो। कोई हाकिम बन कर दूसरों पर शासन करता है और

कोई नौकर रखकर उनकी सेवा का आप फल भोगता है। जिस प्रकार गाय को रखकर उसका दूध घी आप हड़पता है वैसे ही एक ही व्यक्ति हजारों का अफसर बनकर उनसे रात-दिन सेवा लेता है और केवल दो मुट्ठी चावल या अनाज देकर उनको अपने अधीन रखना चाहता है। न यह खुश और न वह खुश ! संसार में हर जगह अशान्ति फैली हुई है और मनुष्य इसी बेचैनी को शिष्टाचार और सभ्यता कहता है और जब कभी किसी मनुष्य को यह पराधीनता असह्य हो जाती है तब तोप और बन्दूकों इत्यादि के आविष्कार से उनको डरा और धमका कर घायल करके और मारकर अपने आधीन रखने की युक्तियाँ सोचता है।

क्या यह दशा अच्छी है। राम-राम ! कहो !

यह दशा केवल इस अहंकार रूपी दर्पण के हाथ लगने से हुई है। आप तो नष्ट हो रहा है। अपने साथ अपने भाइयों को भी रात-दिन दुखी करता रहता है। यह मनुष्य की दशा हो गई है। और जो जितना सभ्य है, उतना ही अधिक अत्याचारी बना हुआ है। भाषा विज्ञान का अभिमान, विद्या, कला कौशल का अभिमान वस्त्र और आभूषणों का अहंकार रीति रिवाज का अभिमान कहाँ तक कहें हजारों ही प्रकार के अभिमान मनुष्य को सता रहे हैं। वह एक क्षण के लिये भी नहीं सोचता कि इसका परिणाम क्या हो रहा है। संसार नर्क का स्थान बन गया है। सुख और हर्ष कोसों दूर हैं। नर्क को कहाँ खोजते हो ? क्या मनुष्य की बुद्धि और अहंकार ने इस संसार को नर्क नहीं बना लिया है ! सोचो, समझो, तब यह विषय भली प्रकार समझ में आवे।

— + —

परम संत परम दयाल हजूर फकीर चन्द्र जी महाराज के

अन्तिम पत्र

मनुष्य बनो पत्रिका जो कि काफी समय से हजूर परम दयाल फकीर चन्द्र महाराज के अनुभव पूर्ण विचारों को प्रकाशित कर रही है। इसका अहसान उन अधिकारी सज्जनों पर है जिन्होंने हजूर परम दयाल जी महाराज के अनुभव से मनुष्य-बनो पत्रिका पढ़ कर लाभ उठाया है। मैंने १९६३ में पहली बार यह पत्रिका टोहाना जिला हिसार जो इस वक्त हरियाणा में है मंगवाई थी और हजूर के सत्संग पढ़ने शुरू किये थे। क्यों कि मुझे इस पत्रिका द्वारा बहुत लाभ पहुँचा इस लिए मैं भी इस पत्रिका का आभारी हूँ। जब हजूर परम दयाल जी महाराज का शरीर जो कि अनुभव का प्रकट रूप था छूट जाने के बाद उन्होंने मुझे लिखा कि कभी कभी आप अपने उन विचारों को जो आप ने हजूर दाता दयाल महर्षि शिव ब्रत लाल जी महाराज हजूर परम दयाल जी महारज और दयाल स्वरूप नन्दू भाई जी महाराज के मिशन में आकर १८ वर्ष में जो अनुभव प्राप्त किया वो लिख दिया करें। इसलिए ख्याल आया कि हजूर परम दयाल जी महाराज ने अमरीका यात्रा के समय हमें दो पत्र लिखे थे। एक ६ अगस्त १९८१ को और दूसरा ७-८-८१ को ये उन के अन्तिम पत्र हैं और इन पत्रों में उन्होंने अपने लेखों में जो पत्र हजूर परम दयाल जी महाराज ने लिखे और मैं उस समझो जो कि हजूर की दया से प्राप्त की के आधार पर मनुष्य-बनो के प्रेमियों की सेवा में रखा करुँगा। दावा नहीं कि जो कुछ मैं ने समझा है, यही ठीक है। हजूर का पहला पत्र जो ६-८-८१ को लिखा गया निम्न लिखित है:—

" रात के दस बजे हैं। रिटस बर्ग के बड़े अस्पताल में एक २०१५ नं कमरे में पड़ा हूँ। अपनी ९५ वर्ष की सारी आयु मेरे सामने घूमती है। साधन किया अभ्यास किया इन से क्या समझा ? कि मैं वास्तव में एक चेतन का बुलबुला हूँ। मैं चाहता था और चाहता हूँ कि जब मेरा अन्तिम समय आए तो मैं कैसे शरीर व मन इत्यादि को छोड़कर ऊपर जाऊँगा तो यह बता जाऊँगा। मगर अनुभव कुछ उल्टा हो रहा है। मैं चाहता हूँ कि शरीर और मन से अलग हो जाऊँ मगर जब शारीरिक कष्ट होता है, सिर चकराता है तो यह असम्भव हो जाता है। क्यों कि चार दिन से दिन रात निरन्तर ग्लूकोस दिया जा रहा है अतः अब थक गया हूं और ऐसा करना असम्भव हो गया है। अब रात के १२ बजे हैं। पेशाब के बार-बार आने और सख्त जलन होने के कारण चार दिन से कुछ खाया नहीं जाता। जो ज्ञान-ध्यान था वो कहां गया ? काश बड़े बड़े महात्मा यह हाल बताते कि उनके साथ क्या क्या बीती ? साँसारिक जीव इस से लाभ उठाते।

खेद ! मुझे सिवाय इस के कि पाँच दिन से चारपाई से बंधा हुआ हूँ या पेशाब के समय जलन होती हैकोई विशेष कष्ट नहीं। मगर मालिक ! मुझे एक दुःख है मैं ने जहां तक हो सका जीवन में किसी सत्संगी का नहीं खाया। केवल मूल चन्द्र रिज्जूमल कटनी वाले दुर्गादास व मेरा लड़का रुपया भेजते हैं जिस से मेरा निर्वाह होता है। अब यहाँ का खर्च परमात्मा ही जानें क्या होगा। १५० डालर तो मकान का प्रतिदिन का किराया है।

डा० राव कहता है — चिन्ता मत करें वह सब सहन करेगा। और यदि मैं अमरीका में मरा तो २००० डालर और खर्च होगा। कर्म की फिलासफी को देखकर आँखों में आँसू आ रहे हैं। तो क्या मुझे फिर दूसरे जन्म में जो यह रूपया खर्च करेंगे, देने पड़ेंगे ? मस्तिष्क सोचने योग्य नहीं।

छम छम बरसत पानी नैनन से मेरे,
अंजामे-कर्म जब मेरे सामने आता है ।
बस एक ही बात से दिल को है सहारा,
कि मालिक के चरणों में समाना आता है ।

मौज, मौज, मौज, । मैं सुखी हूं । दया करो जो फिर इस काल कराल देश में न आऊँ ।

जब इन्सान किसी शारीरिक, मानसिक या आत्मिक कष्ट में होता है या अन्त समय नजदीक महसूस होता है तो उस का अपना ही जीवन उसके सामने आता है । इसी तरह हजूर परम दयाल जी महाराज का ६५ वर्षीय जीवन सामने आया और साधन अभ्यास द्वारा उनको यह अनुभव हुआ कि इन्सान एक चेतनता का बुलबुला है- जो कि मौज से शब्द से प्रकट होता है । जब तक बुलबले की सत्ता मौजूद रहती है और नीचे आकर आत्मिक मानसिक और शारीरिक चेतनताएं जागृत होती हैं एक मैं पना आ जाता है वही हमको तरह तरह के नाच नचाता रहता है । संसार में सन्त आते हैं । सत्गुरु के काम के सिलसिले में वो हमें बता देते हैं कि तू है कौन ? हजूर परम दयाल जी महाराज से पहले कई संत महात्मा आए । उन्होंने अपने अपने अनुभव के अनुसार बताया । किसी ने कहा हम आत्मा हैं जो अजर अमर है जो जन्म मरण से रहित है केवल पुराना शरीर छोड़कर नया धारण कर लेते हैं । किसी ने कहा जीवात्मा परमात्मा और प्रकृति यह तीनों अनादि हैं । हजूर परम दयाल जी महाराज ने बड़ी खोज कर के बताया और अपने सत्संगों में लिख गये हैं कि आदमी के अन्तर कोई भी ऐसी चीज नहीं जो बाहर से ना आई हो और जो अनादि और नित्य हो । सब चीजें बाहर के तत्वों से बनती हैं ।

अगर किसी को यह ज्ञान हो जाये या विश्वास हो कि मैं एक चेतनता का बुलबुला हूँ उसे जिन्दगी का ज्ञान हो जाता है तब

खुले और बन्द हुए यही राजे जिन्दगानी है। तो उसकी जिन्दगी में काफी परिवर्तन आना चाहिये। व्यवहारिक जिन्दगी में सब से प्रेम से जियो और जीने दो के नियमों पर स्वाभाविक चलना आ जाता है इस वक्त संसार में जितने भी झगड़े हैं, अगर इस बात की समझ आ जाए तो बहुत हद तक खत्म हो जाएं। दूसरे अन्तर के साधन अभ्यास में इस ज्ञान को साथ लेकर अन्तर जानें वाले को सुविधा रहती है।

(क्रमशः) भगत

पद

१ गुरू हैं तेरे पास फकीरवा, गुरू हैं तेरे पास ॥टेक॥
त्याग भरम विचार मन का, छोड़ जग की आस।
आस कर एक गुरू चरन की, सब से होय निरास ॥फकीरवा
तेरे मन में तेरे तन में, तेरे सांसों साँस।
गुरु बसें दिन रात प्यारे धर चरन विश्वास ॥फकीरवा
गुरू नहीं तीरथ बरत में, गुरू न योग अभ्यास।
ढूँढ अपने हृदय में नित, वहाँ उनका बास ॥फकीरवा
करम में माया है व्यापी, धरम यम की फांस।
वन में अनबन देखी मन में, भरम था सन्यास ॥फकीरवा
तेरी चिंता गुरू को होगी, क्यों है तुमको त्रास।
राधास्वामी चरन गह, अज्ञान का कर नास ॥फकीरवा

२ सोच समझ कर जतन फीकरवा ॥टेक॥
छिन छिन उमर घटत दिन राती, कभी साँझ कभी प्रभाती
माया मोह महा उत्पाती, इनसे लगा मत लगन फकीरवा ॥सोच
सुख सम्पत धन माल खजाना, इन्हें देख क्यों जिया ललचाना।
झूठे है सब नाम निशाना, तासों उपजे पतन फकीरवा ॥सोच

गुरू भक्ति है सब का सारा, देखा सोचा समझ विचारा ।
जानेगा कोई गुरु मुख प्यारा, मान मान यह बचन फकीरवा ,,
माया मोह जाल अति भारी, तीन ताप से जगत दुखारी ।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, अब बुझी मन की जलन फकीरवा

३— ठगनी तू क्या रूप दिखावे, गुरु भक्त न धोका खावे ।।टेक।।
पाँव में घुंघरु हाथ में छल्ले, सुन्दरी पहन रिझावे ।
घर में नाचे थिक थिक थई, बाहर तालु बजावे ।। ठगनी
हाथों में मेंहदी लाये के बाघन, तीन लोक खाजावे ।
आँख में सुरमा भरम का डाले, तक तक नजर चलावे ।। ठगनी
गले में हार नौलखा पहने, मांग सेंदूर भरावे ।
नाक मैं बेसर कान में झुमके, ठमके ठमद फँसावे ।। ठगनी
कमर करधनी पेच है अडवड़, लचक के चाल दिखावे ।
घूँघट काढ़ हाथ मटकावे, आँखों सेन बुझावे ।। ठगनी
जोशन बाजू जुगनू पहुँची, छागड़ झाँझ सजावे ।
पोर पोर से आप बंधी है, बध बध बन्ध बन्धावे ।। ठगनी
बैरी मारे दाव पेच से, यह हँस तीर चलावे ।
रोवे गावे रोये गाय कर, कोई बचन न पावे ।। ठगनी
माया जाल कठिन हैं भारी, द्वन्द्व अनर्थ मचावे ।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, सतगुरु आन छुड़ावे ।। ठगनी

४ आवे जाय सो माया, माया माया साधु ।।टेक ।।
अकथ अलौकिक अगम अपारी, वार पार से निसि दिन न्यारी ।
कभी सुरझी कभी रही उरझारी, माया ने भरमाया ।। साधु ।।
कभी सामान्य विशेष कहीं है, कहीं विष्णु और शेष कहीं है ।
कहीं ब्रह्मा महेश कहीं है, विरला कोई लख पाया ।। साधु
निराकार साकार की खानी, अगुन सगुन के रूप दिखानी ।
सत्त असत्त से रही बिलगानी, कहीं धूप कहीं छाया ।। साधु ।।
काल रूप होय जग को फाँसा, कभी आस दे करे निरासा ।

रूप अरुप का अजब तमाशा, निहवेरो निरदाया ॥ साधु ॥
छिन में गुप्त प्रगट छिन भीतर, दिन में रात रात दिन भीतर ।
बाहर गिन गिन गिन गिन भीतर, ऋषि मुनि भेद न पाया ॥
माया तो घट घट को बासी, अचरज अद्भुत कौतुक रासी ।
देख वियोग में सहज उदासो, सतगुरु मर्म लखाया ॥ साधु

५— आया आया आया, मैं गुरू चरनन में आया ॥ टेक ॥
तिल में धँसा विराट को देखा, रचना न्यारी न्यारी ।
परगट विनसत छिन छिन पल पल, सो नहीं लागी प्यारी ॥आया
अव्याकृत त्रिकुटी में निरखा, रूप अनूप विचारी ।
वह स्थूल यह सूक्ष्म दिखाना, धोका भरम है भारी ॥
सुन्न महासुन्न हिरण्यगर्भ है, परखा नैन उघारी ।
सोहे कारन ब्रह्म अवस्था, सब विधि परख निहारी ॥ ,,
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति ब्रह्म की, ब्रह्मा विष्णु त्रिपुरारी ।
जैसा जीव ब्रह्म तस दरसा, मन बहु भया दुखारी ॥ ,,
सोहंग पुरुष भँवर दरसाना, सत्ता की छाधारी ।
इसको छोड़ चली सुरत आगे, झिलमिल ज्योति जगारी ॥ ,,
सत पद अलख अगम की लीला, देख देख हर्षारी ।
गुरु की दया से अमर पद पाया, राधास्वामी पर बलिहारी ॥

६— दया मय अब तो कीजे दाया ॥ टेक ॥
माया करम से जीव दुखारी, भव के फाँस फँसाया ।
छूटन की कोई राह न सूझे, भूल भरम भरमाया ॥ दयामय
अबल निबल में शक्ति कहाँ है, वह तो दीन दुखारी ।
अपने बल तुम आन छुड़ाओ, जग जीवन हितकारी ॥ ,,
त्राह त्राह कर चरन कमल में, होय अचेत प्रभु आयो ।
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, यम का फंद कटायो ॥ दयामय

७— समझे नहीं गँवारा, सुरत का भेद अपारा ॥ टेक ॥
सुख के कारन भूले भटके भरमा बारम्बारा ।

कभी इन्द्री कभी मन बस होता, फिरता मारा मारा ॥ समझे
पुत्र कलत्र और मान बड़ाई, यह सब जाल पसारा ।
इनमें सुख ढूँढ़े अज्ञानी, सुख इन सब से न्यारा ॥ ,,
नहीं नहीं यह करम धरम में, नहीं तत्व ज्ञान विचारा ।
यह तो भेद कोई गुरुमुख जाने, राधास्वामी चरन दुलारा ॥
तीरथ बरत नियम और संयम, बहु कीये चार अचारा ।
फेरी फेरी में जनम गँवाया, हाथ लगा नहीं सारा ॥ ,,
राधास्वामी चरन शरन बलिहारी, गुरु ने दया इशारा ।
मिट गया द्वन्द अचल हुई काया, सतगुरु के उपकारा ॥ ,,

—०—

मंगल कामना

१– श्री अमर चन्द्र, ५ कैनाल कालोनी अमृतसर से सहायतार्थ 25/ रु० प्राप्त हुये मालिक से कामना है कि वह उन्हें समृद्धशाली बनाये ।

२– 12/ रु० रूपचन्द्र जोतवाणी ने पत्रिका की सहायतार्थ भेजे मालिक से कामना है कि मालिक उन्हें उन्नति की ओर अग्रसित करे । एवं पत्रिका से सद्भावना बनाये रखे ।

३– बद्रीनारायन पूरालाल चौहान ढ़ावला हर्दू उज्जैन ने अपने पिताजी के निधन पर १००/ रु० मनुष्य बनो के सहायतार्थ भेजे हैं मालिक से कामना है कि मालिक उनके पिताजी की आत्मा को शान्ति प्रदान करे एवं समस्त परिवार को इस अथाह कष्ट को सहने की शक्ति प्रदान करे ।